शोध मंथन Vol. XIII No.II Apr.-June 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

श्री राम चरित मानस में अमृतमयी सीता का चरित्रांकन

प्राप्तिः 25.05.2022
स्वीकृतः 04.06.2022

31

डा० कैलाश चन्द्र दिवाकर
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, रजा नगर
स्वार, रामपुर (उ०प्र०)
ईमेलः *rajkamal1317@gmail.com*

सारांश

श्री राम चरित मानस ऐसे समय में लिखा गया अमर काव्य है जिस समय भारत बेहद उथल–पुथल से गुजर रहा था। भारत की जनता मानसिक एवं शारीरिक रूप से बेहद टूट चुकी थी। बेहद टूट चुकने के पश्चात मन शान्ति और आनन्द की खोज करता है। धन, दौलत, पुत्र, स्त्री आदि बहुत कम समय के लिए सुख प्रदान करते हैं। ऐसे में स्थाई सुख की तलाश इंसान को परमात्मा की ओर ले जाती है। यदि यह कहें कि परमात्मा की ओर इंसान जाता ही तब है जब वह समस्त सांसारिक वस्तुओं से निराश हो चुका होता है। इस सन्दर्भ में ''हारे को हरि नाम है'' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। निराशा और हताशा की गहरी धुंध में इंसान आशा की किरण खोजता है ऐसे समय में गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा ''श्री राम चरित मानस की रचना मील का पत्थर सरीखी है''। श्री राम चरित्र मानस महान चरित्रों से भरा है। इन्हीं महान चरित्रों में से एक चरित्र है अमृतमयी माँ सीता का, यहाँ मानस के मुख्य पात्र (मानस की आत्मा) श्री सीता जी के चरित्र के महान बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे।

मुख्य बिन्दु

नारी चरित्र, नारी कर्तव्य, आदर्शमय चरित्र, उत्कृष्ट मन, मानसिक शान्ति, गुरूकृपा का महत्व, समन्वयशील, पुष्प वाटिका, भवानी आदि।

नारी विषयक जो अवधारणा भारतीय आचार'–विचार की सतत परम्परा में विद्यमान है, व्यक्ति और समाज से सम्बद्ध चिन्तन के संवाहक कदाचित समस्त प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन वाङमय (साहित्यक और साहित्येतर ग्रंथ) में उसका परिचय उपलब्ध है। विजातीय संस्कृति के अधुनातन न्यूनाधिक प्रभाव के बावजूद नारी की सामाजिक स्थिति और भूमिका के निर्धारक वैचारिक मानदण्ड आचरण और व्यवहार की अविचल संस्था के रूप में आज तक भारतीय संस्कार में उपस्थित हैं। पश्चिम से आ रही वैचारिक बयार ने नारी विचार–विमर्श को नये आयाम अवश्य दिये हैं किन्तु युगों से पुष्ट केवल समाज दर्शन के सैद्धान्तिक विवेचन और पौराणिक तथा लोकगाथात्मक साहित्य में अपितु घरेलू कथा–कहानियों में भी मौजूद हैं। आधुनिक काल के भारतीय चिन्तन और साहित्य ने

नारी के परम्परागत रूप से कुछ भिन्न दिशा में उसे महिमा मंडित किया है, तद्नुसार वह श्रृद्धा है, उसके सहचर्य में 'पावन गंगा स्नान' की अनुभूति होती है।

भारतीय परम्परा में नारी विषयक अवधारणा का दुहपरापन देखने में आता है। एक ओर तो नारी अपनी सृजनात्मक भूमिका में मान्य है, वह प्रेम, दया और उदारता की मूर्ति है। उसका व्यक्तित्व परहितेच्छा से ओत–प्रोत है। दूसरी ओर वह आक्रामक विनाशकारी और क्रूर है। साथ ही, वह अवांछित आचरण भी कर सकती है। अतः उसका पुरूष के नियंत्रण में रहना आवश्यक है। कदाचित इसी अवधारणा की बयार में तुलसी उसे – ''ढोल गँवार शूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।''[1] से सम्बोधित कर गये उन्होंने सीता के चरित्र के माध्यम से नारी के उत्कृष्ट ग्राह्य रूप को प्रस्तुत किया है, यहाँ तक कि दानव पक्ष की कुछ नारियों को भी श्रेष्ठता के आयाम में देखा है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के प्रवर्तक मनु ने नारी के प्रति दोहरी दृष्टि का ही परिचय दिया है। एक ओर तो नारी उनकी दृष्टि में सर्वत्र पूज्या है, जहाँ वह है, वहाँ देवता निवास करते हैं, किन्तु दूसरी ओर उन्होंने नारी को पुरूष के अधीन रहने की व्यवस्था दी है, उस पर पुरूष के नियंत्रण को आवश्यक माना है। मनु के अनुसार नारी के लिए उसका पति, वह चाहे जैसा भी हो, परमेश्वर के तुल्य पूजनीय है। यही उसकी सार्थक भूमिका है जिसके आधार पर वह गुणवती कहलाती है। इस भूमिका से विचलन को उसके पतन का सुनिश्चित कारण कहा गया है। नारी पर पति नियंत्रण की इस सुदृढ़ व्यवस्था ने उसे दासता की स्थिति तक पहुँचा दिया है। उसे निर्भर ही रहना है, आत्मनिर्भर नहीं । मनु ने अवस्था के पत्येक सोपान पर नारी के पुरूष पर निर्भर रहने की व्यवस्था दी है। बाल्यावस्था में उसे पिता पर, युवावस्था में पति पर और वैधव्य में अपने पुत्रों पर निर्भर रहना है। भारतीय समाज को उसकी निर्भरता और आधीनता मान्य है, स्वेच्छित आचरण की स्वतंत्रता नहीं।

तुलसी ने सीता को पत्नी के लिये निर्दिष्ट व्यवस्था के चरम बिन्दु पर अधिष्ठित किया है, यह बात पृथक् है कि सीता के पति राम पर 'पति चाहे जैसा भी हो' का निहितार्थ चरितार्थ नहीं होता। राम जैसा पति तो श्रद्धावनत भाव से आराध्य होना ही चाहिए। भारतीय दृष्टि में यह भाव नारी की गरिमा का द्योतक है। तुलसी वस्तुतः पतिवृत धर्म के पक्षधर हैं। अनुसूया द्वारा सीता को दिये गये उपदेश से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है– ''एकई धर्म एक व्रतनेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।।''[2] अस्तु सीता का व्यक्तित्व पतिव्रत धर्म से ओत–प्रोत है।

स्त्री–पुरूष के बीच सम्बन्ध के विविध आयाम हैं, जैसे पति–पत्नी, पुत्र और माता, पिता–पुत्री तथा भाई–बहन आदि, किन्तु सम्बन्धों पर आधारित नारी विषयक आदर्श जितने पति–पत्नी के सम्बन्ध पर केन्द्रित हैं, उतने किसी अन्य सम्बन्ध पर नहीं। यद्यपि माता के रूप में नारी की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु भारतीय पौराणिक वृतान्तों तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए प्रतिपादित सिद्धान्त–विवेचन में आदर्श पत्नी के अनेकानेक वृतान्त और सन्दर्भ मिल जाते हैं, आदर्श माताओं का उल्लेख कम हुआ है। जो भी हो, माँ है देवी स्वरूपा। देवियों को माँ नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार माँ की आज्ञा का पालन अनिवार्य माना गया है। वह सन्तान को सस्नेह पालती–पोसती है, साथ ही यथावसर सन्तान के प्रति क्रूर और निष्ठुर भी हो जाती हैं अस्तु, पत्नी माँ के समकक्ष नहीं है। वस्तुतः पत्नी की भूमिका परवशता और आधीनता में निष्पादित होती है। उसे ही स्थिति में श्रद्धावनत और पति के द्वारा अनुशासित होकर रहना है। माँ आदरणीया है। प्रत्यक्षः

माँ की भूमिका का उल्लेख भले ही कम हुआ हो, अवचेतन में उसका व्यक्तित्व समाहित रहता है। माँ ही तो देवी रूप में परिणत हुई है और परम वन्दनीया है, उसकी आराध्या है। तुलसी बाल–सुलभ भाव से महेश को पिता और भवानी को माता मान रहे हैं– ''गुरू पितु मातु महेश भवानी। प्रनबहु दीन बन्धु दिन दानी।।''[3]

भारतीय मनीष ने नारी के आदर्शमय उत्कृष्ट रूप को ही महिमा–मंडित किया हैं। उसकी दैविक स्थिति से लेकर सामान्य सांसारिक नारी तक भारतीय मनीषा ने उसे प्रेम, करूणा, औदार्य और सौन्दर्य से आपूरित तथा परहित निरत रूप में प्रस्तुत किया है। उसका यही स्वरूप समस्त नारी–समाज के लिये अनुमन्य है। शैल–पुत्री पार्वती, जनकसुता सीता, सावित्री, शकुन्तला आदि जो पुराण अथवा पुराणाधृत साहित्य की बहुचर्चित नारियाँ हैं, वे नारीत्व के इसी आदर्श रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी के क्रूर और भयावह रूप की ग्राह्यता बहुत कम है। काली के अतिरिक्त मानवेतर दिव्य भयावह रूप स्यात्, ग्राह्य न होता, यदि उसका पराक्रम हितकर न रहा होता, यदि उसने देवताओं के हित में दानवों का संहार न किया होता। काली के दानवों का संहार कर विजय के आनन्दोन्माद में जब भयावह नृत्य किया तो पृथ्वी उसके असह्य भार से काँप उठी। भयभीत देवता उसे रोकने में असमर्थ थे। उन्होंने भगवान शिव से काली का नृत्य रूकवाने का निवेदन किया। शिव ने सम्मोहन द्वारा काली के हिंसात्मक नृत्य को रोकना चाहा किन्तु काली अप्रभावित रही। अन्त में शिव उसके चरणों में लेट गये। जैसे ही काली उनके शरीर पर पैर रखने को हुई, उसे भान हुआ कि जिस पर वह पैर रखने को है, वह उसके पति शिव हैं और उससे अक्षम्य कृत्य हो जाता। उसने अपना क्रोध नियंत्रित किया। पृथ्वी सुरक्षित हो गई।

यहाँ का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि नारीत्सव सामान्य हो या दिव्य हो, उससे मंगल की अपेक्षा है, पति के प्रति सम्मान का भाव उसका परम धर्म है, भले ही नारी स्वयं पूज्या क्यों न हो।

तुलसी ने रामचरित मानस के आरम्भ में सीता को नमन करते हुए कहा है–

''उदभव स्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेययस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।''[4]

अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और संहार करने वाली, क्लेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याण करने वाली, श्री रामचन्द्र जी की पत्नी सीता जी को नमस्कार करता हूँ।

''उद्भव स्थिति संहारकारिणी'' कहकर तुलसी ने सीता की दिव्य क्षमता और शक्तिमत्ता को द्योतित किया है। नारी का लोकोत्तर दिव्य स्वरूप उसके मूलभूत गुणों की पूर्णता और असीमता का द्योतक है। दृष्टव्य है कि उद्भव अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की कारण रूपा स्वाभाविक प्रक्रिया में नारी पुरूष की सहगामिनी 'प्रकृति' है। इस प्रकार नारीत्सव जननी की भूमिका में क्रियाशील है। उद्भव का यह पक्ष नैसर्गिक है। नारी लौकिक और लोकोत्तर – दोनों रूपों में माता है। लोकोत्तर नारी के प्रति पूज्य–भाव ने भी उसे मातृत्व का स्थान दिया है। समाज में वयोवृद्ध नारी को 'माता' सदृश मानने की परम्परा है। नारी जननी के साथ पालनकत्री भी है। इस प्रकार ''उद्भव'' और ''स्थिति'' की भूमिका तक वह सौम्यता की प्रतिमूर्ति है। यह दोनों भूमिकाएँ उसकी सहनशीलता, धैर्य और औदार्य के साथ सम्पन्न होती हैं, किन्तु नारी 'प्रकृति' ही नहीं है, वह 'शक्ति' भी है। 'प्रकृति' के साथ जब 'शक्ति' का उद्रेक होता है तो नारी 'संहारकारिणी' हो जाती है। ध्यातव्य है कि उसका यह संहारक

रूप अमंगलकारी नहीं है। काली देवताओं के हित में हिंसक हुई थी। अस्तु, उसकी 'शक्ति' मंगल के विधान के लिये उभरती है, उससे मानवों और देवताओं के कष्ट का निवारण होता है इसीलिए तुलसी ने सीता को 'उद्भव–स्थिति–संहारकारिणी' के साथ क्लेशहारिणी और 'सर्वश्रेयस्करी' कहा है।

''अति सौम्याति रौद्रायैनतास्तस्यै नमोनमः।
नमोजगत प्रतिष्ठायै दैव्ये कृत्यै नमोनमः।।[5]

भक्तिभाव से ओत–प्रोत तुलसी का मन सीता को माता–रूप में ग्रहण करता है। उनका भक्त हृदय भरत, लक्ष्मण और हनुमान की भूमिका में समाविष्ट होकर सीता को माता कहकर सम्बोधित करता है, 'माता' मानकर ही हनुमान कौशलाधीश राम की कुशल–क्षेम से उन्हें अवगत कराते हैं, उनके कुशल–क्षेम की जिज्ञासा प्रकट करते हैं। यथा–'लक्षिमन विहँसि कहा सुन माता' (लक्ष्मण–कथन, अरण्यकांड), 'रामदूत मैं मातु जानकी, (हनुमान कथन, सुन्दरकांड) सब विधि कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज करूमात जानकी'' (भरत कथन, लंका काण्ड) माता निर्मल मति प्रदान करती है। रामचरित मानस में तुलसी ने इस प्रदेय को अपनी रचना का अवलम्ब माना है। वह सीता के जगत जननी रूप की वन्दना करते हुए कहते हैं–

''जनक सुता जग–जननि जानकी। अतिसय प्रिय करूना निधान की।।
ताके जुगपद कमल मनावउँ। जासु कृपा निर्मल मति पावउँ।।''[6]

सीता को उद्भव–स्थिति संहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, माता तथा जगत जननी कहकर सम्बोधित करना भारत की नारी विषयक उस अवधारणा को बिम्बित करना है जिसमें नारीत्सव अपनी समग्रता में आभासित हुआ है। सुसान वैडले ने अपने शोधपरक निबन्ध' विमेन एण्ड द ट्रेडीशन में मातृत्व के विषय में लिखा है :–

तुलसी भक्त कवि हैं। मानस की कथाधारा में यत्र–तत्र पात्रों के माध्यम से उनका भक्तिभाव व्यक्त हुआ है। वस्तुतः प्रबन्धकार का व्यक्तिगत उसके चरित्रों के माध्यम से ही प्रतिबिम्बित होता है क्योंकि वही उसके अभीष्ट भाव या विचार के संवाहक हैं। सीता राम की पत्नी हैं, पतिव्रत धर्म के निर्वहन में पूर्णतया तत्पर हैं, किन्तु राम के प्रभुत्व को भी उन्होंने भक्त की तरह आत्मसात् किया है। भक्ति–भाव से अनुप्राणित सीता के लिये राम 'आरति हरन सरन सुख दायक' हैं। वह सर्वथा पूर्णकाम हैं, दीन दयालु हैं। अस्तु सीता के आर्त मन का निवेदन है –

'दीन दयाल विरद संभारी। हरहुनाथ मम संकट भारी'।।[7]

सीता के इस निवेदन में आराध्य राम के प्रति एकनिष्ठश्रद्धा है, अडिग विश्वास है और संकट से त्राण मिल जाने की कामना है।

सीता का चरित्र तुलसी की समन्वयशील दृष्टि के भी अनुरूप है। उनकी समन्वय चेष्टा का एक महत्वपूर्ण पक्ष देवत्व और मनुजत्व का समन्वय भी है। जिस प्रकार राम की लोकोत्तर प्रभुता के साथ उनके मनुष्य रूप को भी तुलसी ने उभारा है, उन्हें मर्यादा पुरूषोत्तम प्रभुता में प्रतिष्ठत किया है, उसी प्रकार सीता के दिव्य रूप के संकेत के साथ, उन्हें लोक के धरातल पर मौजूद आदर्श नारी के रूप मे भी चित्रित किया है। सीता मानवीय स्वभाव से युक्त मर्यादित नारी हैं। प्रेमाकर्षण की मूल भूत प्रवृत्ति से वह विरहित नहीं है। पुष्पवाटिका में उनके तथा राम के परस्पर दर्शन के प्रसंग में यह वर्णित है कि राम को देखकर सीता प्रेमाभिभूत हो जाती है :–

''देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहचाने।।
थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हि हूँ परिहरहि निमेखे।।
अधिक सनेह देह भै भारी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचनि मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।''[8]

अभीष्ट व्यक्ति या वस्तु को पाने की उत्सुकता और अधीरता स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति हैं। अक्सर किसी आश्वासन के उपरान्त भी मन के ये आवेग–संवेग बने रहते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य मानस में मानवी सीता से विलग नहीं है। उच्चतम आदर्श की परिकल्पना में सहज मानव प्रवृत्ति को नकारना असंगत है। शोभा और शील के भण्डार राम को देखकर सीता का प्रेम इतना बढ़ गया है कि पुष्पवाटिका से लौटते हुए बार–बार घूमकर राम की छबि निहारती हैं :–

''देखन मिस मृग विहग तरू, फिरइ बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ई प्रीति न थोरि।।''[9]

श्रीराम के अन्तर्बाह्य सौन्दर्य को ह्रदय में बसाकर सीता पुष्प वाटिका से लौट रही है, पर धनुष की कठोरता का संज्ञान मन को आकुल किये जा रहा है, अतः वह भवानी के मन्दिर में जाकर वर रूप में राम की प्राप्ति की प्रार्थना उनसे कर रही है।

''जय–जय गिरिवर राज किशोरी। जय महेश मुख चन्द्रकिशोरी।
जय गजबदन षडानन माता।। जगति जननि दामिनि दुतिगाता।।''[10]

सीता की यह मर्यादित प्रार्थना भवानी को द्रवित कर देती है, वह सीता की विनय और उनके प्रति अपने प्रेम से वशीभूत होकर रहती है'–

यहाँ सीता तुलसी की समन्वयशीलता के एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। उनके मन में राम के प्रति प्रेम और श्रद्धा का संचरण वैष्णवी भक्ति का परिचायक है। भवानी की आराधना से शाक्त सम्प्रदाय की भक्ति को स्थान मिला है। शाक्त जन शक्ति के उपासक हैं। अस्तु यहाँ वैष्णव–शाक्त भक्ति का समन्वय हुआ है।

सीता का भावोद्रेक मर्यादित है। धनुष–भंग से ठीक पूर्व वह अधीर हो उठती हैं। पिता के प्रण का स्मरण उन्हें क्षुब्ध कर देता है। अतः महेश, भवानी और गणेश तीनों से ही मन ही मन प्रार्थना करती हैं। इस प्रार्थना में शैव संप्रदाय की शिव–भक्ति भी सम्मिलित हो जाती है। इस प्रार्थना के कुछ पलों के बाद ही उनके मन में प्रतीति उत्पन्न होती है–''सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर जानी।।'' किन्तु अधीरता, क्षोभ, मनोरथ सिद्धि की आकांक्षा और प्रार्थना, फिर धैर्य और प्रतीति–इनमें से किसी मानसिक स्थिति के उद्रेक का शब्दों में व्यक्त होना तो दूर रहा, सीता के नैसर्गिक शारीरिक मनोभव नियंत्रित रहते हैं। सीता की मर्यादा उनके हर्ष–विषाद को न तो वाणी में व्यक्त होने देती है और न ही आँसुओं में बहने देती है :–

धनुष भंग के तुरन्त बाद राम को जयमाल पहनाते समय भी सीता मन में उछाह के रहते सकुचा रही हैं–

''तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू।।
जाई समीप राम छबि देखी। रहि जन कुअँरि चित्र अवरेखी।।''[11]

सीता हरण के पश्चात् रावण की धमकियाँ और प्रताड़ना, दूसरी ओर वियोग की गहन व्यथायें दोनों स्थितियाँ इतनी असह्य हो गई हैं कि सीता त्रिजटा से काठ लाकर चिता बनाने के लिये कहती हैं। त्रिजटा के द्वारा असमर्थता दिखाने पर दुख–द्वन्द्व और बढ़ जाता है जो निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट हुआ है–

''कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटहि न शूला।।
देखिअत प्रकट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हम भागी।
सुनहि विनय मम विटप असोका। सत्यानाम करू हरू मम सोका।''[12]

लम्बी अवधि तक विछोह का दुख भोगते रहने वाली सीता जब हनुमान द्वारा राम की कुशलता और समर में उनकी विजय का समाचार सुनती हैं, तो उनका मन उल्लसित हो उठता है। दानवों पर पति की विजय के समाचार पर आह्लादित होना स्वाभाविक है। वियोगजन्य पीड़ा से मुक्ति के क्षणों का सन्निकट होना भी आनन्दप्रदायक है।

अतिहरष मन तन पुलक, लोचन सजल कह पुनि–पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा।।[13]

हनुमान का समाचार–कथन सीता के लिये त्रिलोक भर में अतुल्य है, उसके तुल्य हनुमान को बदले में देने के लिये सीता के पास कुछ है ही नहीं। यहाँ हर्ष का अतिरेक भी है। अपने प्रति प्रणामभाव रखने वाले के लिये भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चरित्र की महानता हैं। सीता निश्चय ही महान है।

समाहार

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण में यह स्पष्ट है कि मानस की सीता सामान्य नारी की भाँति सुख–दुख से गुजरती है। वह परिस्थितिजन्य कष्ट को ही झेलती हैं। परिवार की ओर से उनके व्यक्तिगत के दमन की चेष्टा नजर नहीं आती है। अग्नि–प्रवेश के आदेश के अतिरिक्त राम भी उन पर अपने पुरूषत्व को आरोपित करते प्रतीत नहीं होते। वह केवल दानव–पुरूष हैं जो उनका अपहरण कर उन्हें ले जाता है और धमकियों से संत्रस्त करता हैं। वनवास की अवधि में रावण के द्वारा अपहृत होकर ही वह राम से विछोह की पीड़ा झेलती हैं किन्तु शेष समय की असुविधाजनक परिस्थितियों में वह प्रसन्न और सन्तुलित रहती हैं। प्रत्यक्षतः वनवास सुखद नहीं होता, पर सीता अपने पति के साथ सुखी हैं। कष्ट है पर आत्म सुख में वह तिरोहित हो जाता है। नारी के लिए, मुख्यतया बलात् नहीं चलाया जाता, अन्तः प्रेरणा से वह स्वयं चलती है। वास्तव में भारतीय नारी इसी आदर्श से निर्मित है।

आभार

इस शोध पत्र को लिखने में मैंने मानस मर्मज्ञ बाबा मुरली दास महंत शिव मन्दिर नानकपुरी, टाण्डा, जनपद बरेली, डा० शिवओम शर्मा (मानस प्रेमी) प्रवक्ता ए०बी० इ०कालेज, शाहजहॉपुर, स्व० चन्द्र प्रकाश सक्सेना 'कुमुद' जी पूर्व प्रधान सम्पादक 'युवा अवतार' पाक्षिक मोटिवेशनल समाचार पत्र, रामपुर (उ०प्र०), डॉ० राजीव पाल असि०प्रोफेसर हिन्दी विभाग रज़ा पी.जी. कालेज, रामपुर (उ०प्र०) से विशेष मंत्रणा एवं विचार–विमर्श किया है इस हेतु मैं इन महानुभावों का विशेष आभार प्रकट करता हूँ।

संदर्भ

1. तुलसीदास, गोस्वामी. श्रीराम चरित मानस. सुन्दरकाण्ड. पृष्ठ **715 / 48 / 6.**
2. तुलसीदास, गोस्वामी. श्रीराम चरित मानस. अरण्यकाण्ड. पृष्ठ **609 / 4 / 10.**
3. तुलसीदास, गोस्वामी. श्रीराम चरित मानस. बालकाण्ड पृष्ठ **21 / 14 / 3.**
4. वही. बालकाण्ड. पृष्ठ **02 / 05.**
5. दुर्गा सप्तशती. पंचम अध्याय. छंद सं० 13.
6. तुलसीदास, गोस्वामी. श्री राम चरित मानस. बालकाण्ड. पृष्ठ **24 / 16 / 09.**
7. तुलसीदास, गोस्वामी. श्री राम चरित मानस. सुन्दरकाण्ड. पृष्ठ **722 / 26 / 03.**
8. तुलसीदास, गोस्वामी. श्री राम चरित मानस. बालकाण्ड. पृष्ठ **211 / 231 / 4–7.**
9. वही. पृष्ठ **213 / 234 / 0.**
10. वही. पृष्ठ **214 / 234 / 01.**
11. वही. पृष्ठ **215 / 235 / 03.**
12. वही. पृष्ठ **239 / 263 / 03.**